अष्टम सर्ग

याचना

(सार)

भावों की गङ्गा ले उर में,
गङ्गा तीर[1] खड़ी है।
आस भरी विह्वल पूजारत,
सुत पर दृष्टि जड़ी है।
जिसे देखकर स्मृतियों की
खुलती एक लड़ी है।
उसे आज सम्मुख विलोक
ममता क्यों भीत[2] बड़ी है ॥1॥

अथवा सदा प्रकम्पित रहना
इसकी बनी प्रकृति है।
जी भर कर पी लूँ आँखों से
क्या मनोज्ञ आकृति है।
जब तक अर्चारत है देखूँ
आगे रखनी धृति[3] है।
नहीं जानता जिसे पूजता
उसकी ही तू कृति है ॥2॥

1. किनारे; 2. भयभीत; 3. धैर्य।

भावों के उस महाउदधि में
खोयी पाण्डव माता।
श्वेत दुकूल[1] और अलकों[2] को
पावन[3] पवन उड़ाता।
शुभ्र कुमुदिनी सी उस छवि को
धवल-कीर्ति[4] ने देखा।
मनस्पटल पर खिंची तभी
विस्मय की छोटी रेखा ॥3॥

देकर अर्घ्य जलाञ्जलि से
निकला वह सुरसरि[5] पय से।
आ समीप बोला कुन्ती से
कुछ अतिरिक्त विनय से।
अहो भाग्य गोधूलि[6] समय में
दरस राजमाता का।
हो प्रणाम स्वीकार नमन
करता है सुत राधा का ॥4॥

करें देवि आदिष्ट[7] इष्ट[8]
बतलाएँ मैं प्रस्तुत हूँ।
करूँ न तर्क वितर्क वचन के
पालन में भी द्रुत हूँ।
पाया सेवा धर्म जन्म से
यह वृष[9] है बड़भागो।
किन्तु आपके नयनों में क्यों
दिखती करुणा जागी ॥5॥

---

1. वस्त्र; 2. केश; 3. पवित्र; 4. शुभ्र यश वाला; 5. गङ्गा; 6. सायंकाल; 7. आदेशित; 8. वांछित; 9. कर्ण का नाम।

दृष्टि सनीर[1] अधर में कम्पन
कुछ पल बोल न पायी।
तीव्र हो गयी मानसरण में
भावों बीच लड़ाई।
उठा धूम चेतन ढँकने को
मृदु काया थर्राई।
फूटे अस्फुट से कुछ स्वर पर
फिर वाणी भर्राई ॥6॥

सँभली किन्तु प्रकृति[2] थी ऐसी
पूछा तू प्रस्तुत है।
अर्चनान्त[3]-याचक-अभिलाषापूर्ति
हेतु प्रतिश्रुत[4] है।
तो जीवन में प्रथम बार
तुझसे याचना करूँगी।
मान और ममता में आखिर
ममता मात्र वरूँगी ॥7॥

नरसमाजसन्त्रस्त बनीं जो
ममता चेष्टाहीना।
और पाँच शिशु रहे जगाते
रही अबोधा दीना।
कि·तु देखकर तुझे जागती
पगली सी धाती है।
बेसुध पुनः लोकभय करता
विवश लौट आती है ॥8॥

1. अश्रु युक्त; 2. स्वभाव; 3. पूजा के बाद; 4. प्रतिज्ञा बद्ध।

आज एक अन्तिम अवसर
बस ममता ने पाया है।
प्राणों का ही मोह उसे
इस ओर खींच लाया है।
एक बार कह अम्ब तनय[1]
बस एक बार कह मुख से।
शब्दामृत से जिए जननि
कुरूरानी मृत हो सुख से ॥9॥

पूज्या क्या कह रहीं स्वप्न भी
होता कहीं प्रकृत[2] है।
माता कैसे कहे वृषल[3] वृष
राधा का ही सुत है।
आज्ञा दें कुछ और दास
परिचर्या को प्रस्तुत है।
कर सकता क्या अधिक आपके
हेतु सूत का सुत है ॥10॥

नहीं सूत तुम जनक तुम्हारे
अग जग नित्य प्रकाशक।
अंशुमान[4] के अंश पिता का
ही तू परम उपासक।
अनसूयासुतदत्त[5] मन्त्र फिर
तरुण चपलता मन की।
किए देव आहूत पृथा भूली
थी सुध बुध तन की ॥11॥

---

1. पुत्र; 2. सत्य; 3. निम्न कुल का; 4. सूर्य; 5. दुर्वासा।

धन्य मानवी हो जाती
पाकर ऐसी अनुकम्पा।
किन्तु कन्यका के स्वप्नों पर
गिरी विभीषण[1] शम्पा[2]।
हुई सम्भ्रमित परम अबोधा
विवश त्याग कर तुझको।
कुल वेदी पर निज ममत्व बलि
पड़ी चढ़ानी मुझको ।।12।।

एक विवश कन्या ने तुझको
अपगा[3] बीच बहाया।
चर्मण्वती[4] और कालिन्दी[5] ने
तुझको दुलराया।
मन्दाकिनी[6] जगन्माता ने
झूला तुझे झुलाया।
ममता की प्रतिमा सी तुझको
राधा तक पहुँचाया ।।13।।

विधि का कैसा खेल तुझे भी
बना दिया षाण्मातुर[7]।
तेरी प्रथम जननि का सुत है
हृदय आज अति आतुर।
छोड़ दिया ममता ने पीछे
आज हस्तिना का पुर।
हारी कुरुकुलवधू मिला है
माता को अपना उर ।।14।।

1. भयानक; 2. बिजली; 3. नदी (अश्ववेगा); 4. चम्बल; 5. यमुना;
6. गङ्गा; 7. कार्तिकेय।

कर्ण

(सरसी)

सच महनीय व्यक्तियों की है महिमा अगम अपार।
शायद देवि जाह्नवी[1] आयीं रूप मानवी धार।
किए प्रवाहित शिशु सत्वर ही वसुओं[2] को दी मुक्ति।
मम उद्धार हेतु ही की थी हो दयार्द्र वह युक्ति ॥15॥

(सुमेरु)

नहीं कुछ दोष इसमें आपका है।
नहीं यह कार्य अणुभर पाप का है।
सदा सर्वस्व यश को मानते हैं।
स्वजीवित[3] तुच्छ क्षत्रिय जानते हैं ॥16॥

किया था क्षत्रियोचित कर्म ही तो।
निभा कन्याजनोचित धर्म ही तो।
बहाया तनय को करुणा विसारी।
महत्तर त्याग है कुलक्षेमकारी ॥17॥

(सार)

अब तक मुझे तनय कहने में
लाज तुम्हें थी आती।
वत्सलता से आज आपकी
उमड़ रही है छाती।
दीन हीन मैं रहा भटकता
नहीं कभी सुधि आयी।
बना प्रतिस्पर्धी प्रचण्ड तब
यह जन पड़ा दिखायी ॥18॥

---

1. गङ्गा; 2. वसु— एक देव समूह जो संख्या में आठ है—आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास; 3. अपने प्राण।

कवच और कुण्डल धारी यह
अब तक रहा अपरिचित।
करतीं रहीं ममत्व आज के
लिए मात्र क्यों सञ्चित।
जो कुलकीर्तिकलंक अशिव[1] था
गया त्वरित[2] ही त्यागा।
आज अचानक प्रेष्ठ[3] हुआ क्यों
यह अकुलीन अभागा ॥19॥

पद[4] क्षेप प्रत्येक भङ्गिमा[5] हर
चिन्तन हर चेष्टा।
पूर्व परिगणन से प्रेरित तुम
देवि नयज्ञा[6] श्रेष्ठा।
देख लिया जब अर्जुन जैसे
सुत का बनता घाती।
ममता भी अब राजनीति का
शस्त्र बनायी जाती ॥20॥

कीर्ति आपको सन्तत प्यारी
निज अपत्य[7] से बढ़कर।
धर कर जन्म कुलीन वंश में
पदपर ऊँचे चढ़कर।
आभिजात्य[8] है कौन जानता
कितने दोष छिपाए।
गठरी दोषों की दिखता है
बस अकुलीन उठाए ॥21॥

---

1. अमंगलकारी; 2. शीघ्र; 3. परमप्रिय; 4. कदम; 5. भावमुद्रा; 6. राजनीति विद; 7. सन्तान; 8. कुलीनता।

रङ्गभूमि में ललकारा था
जब अर्जुन को जाकर।
द्रोणशिष्य सम्मान बचाया
एक तर्क ही पाकर।
राजपुत्र वह क्षत्रिय योद्धा
मैं अति निन्दित चाकर।
परिचय अपना दे न सका
मैं लौटा शीश झुकाकर ॥22॥

शूरवीरता हुई तिरस्कृत
बिंधी व्यंग्य बाणों से।
क्या बीती थी उस क्षण मुझपर
पूछो इन प्राणों से।
रङ्गभूमि उपहास भूमि थी
बनी हस्तिनापुर की।
सुत-रक्षार्थ न ममता दौड़ी
तोड़ दिवालें उर की ॥23॥

पीड़ा सहती मौन भीरुता[1]
सब कुछ रही सहाती।
लोकवाद[2] बढ़कर होता है
दिव्यास्त्रों से घाती।
बस अलीक[3] परिवाद[4] हेतु
सीता सी त्यागी जाती।
जिसकी चरणधूलि से जग
क्या पावनता तर जाती ॥24॥

1. भग; 2. लोक निन्दा; 3. मिथ्या; 4. कलंक।

मर्यादा ने जिसे प्रथम ही
कारागृह में डाला।
आर्यपुत्र[1] अभिशप्त[2] दिखा
क्या पाए जिसे उजाला।
है मुमूर्षु[3] ममता मेरी तुम
टालो अरे मरण को।
व्यंग्यबाण छोड़ते समय मत
तानों इतना गुण[4] को ॥25॥

बनीं राजमहिषी[5] कुरुकुल की
वैभव से थी संवृत[6]।
दीपशिखावत किन्तु धूम से
सदा रही हूँ आवृत।
अपना आप जलाया मैंने
दुखड़ा किसे सुनाती।
नारी जब रानी बनती है
व्यक्ति कहाँ रह जाती ॥26॥

(रूपमाला)

साधु[7] पुरजन सामने था अज्ञता[8]-अपदेश[9]।
भेज क्या सकती नहीं प्रच्छन्न[10] कुछ सन्देश।
बुलाकर मुझको महल में कभी पा एकान्त।
वत्स कहतीं त्वरित होता वेदना का अन्त ॥27॥

(सरसी)

कवच और कुण्डल बन सकते थे मेरे अभिज्ञान[11]।
किन्तु स्वेच्छया ओढ़ रखा था तुमने तो अज्ञान।
गए विडौजा[12] छद्म रूपधर लेकर उनका दान।
ठीक युद्ध से पहले मुझको जननि रही पहचान ॥28॥

---

1. पाण्डु; 2. कर्दम ऋषि के शाप से वे स्त्री संसर्ग नहीं कर सकते थे; 3. मृत्यु की ओर अग्रसर; 4. धनुष की डोरी; 5. पटरानी; 6. घिरी हुई; 7. अच्छा; 8. अज्ञान; 9. बहाना; 10. छिपा हुआ; 11. पहचान के साधन; 12. इन्द्र।

(सार)

त्याग दिया था मुझे अकारण
आज लिवाने आयीं।
छलनी हुए हृदय पर ममता
लेप लगाने आयीं।
अब तक बैठी मूक महल में
जब आ गयी लड़ायी।
किया सतत् अपमान सूत कह
उन्हें बतातीं भाई ।।29।।

क्षत्राणी हूँ नहीं व्यग्र[1] मैं
आने वाले रण से।
फटता हृदय विवश अबला का
मात्र एक कारण से।
भ्राताओं के बाण भरेंगे
माता का उर व्रण[2] से।
होंगे द्वन्द्वनिरत जब प्रेरित
अपने-अपने प्रण से ।।30।।

जब अनर्थ की जननी बनते
अपनी चुप्पी देखी।
लोकवाद की भीति आज तनु[3]
इससे मैंने लेखी।
पुत्र त्याग दुःख सहा जर्जरा
हुई पापिनी काया।
निकला जाता आज हाथ से
खोया सुत जो पाया ।।31।।

1. बेचैन, व्याकुल; 2. घाव; 3. छोटी, थोड़ी।

नहीं पराजित आज लोकभय
मुझको कर सकता है।
सुत को तृषित[1] ममत्व अङ्क में
खुल कर भर सकता है।
चलो तुम्हारे अनुज बनेंगे
जीवन भर के चेरे।
क्षमा करो अपराध जननि के
झेले दुःख घनेरे ।।32।।

धर्मराज सा अनुज मिलेगा
और भीम का भाई।
चरण दौड़ अर्जुन पकड़ेगा
माने आज लड़ाई।
नकुल और सहदेव बनेंगे
लक्ष्मण औ रिपुसूदन[2]।
नित्य करेगी द्रुपदसुता
तेरे चरणों का वंदन ।।33।।

(प्रमाणिका वृत्त)

विशेष काल जानके।
विचार पूर्व ठानके।
करी अपूर्व याचना।
अहा महा प्रवञ्चना ।।34।।

नहीं कभी लगा मुझे।
कि जीव मैं अनाथ हूँ।
मिली प्रवीर[3] मित्रता।
सुयोधनादि साथ हूँ ।।35।।

1. प्यासा; 2. शत्रुघ्न; 3. श्रेष्ठ वीर।

कलंक ढो रहा सदा।
समग्र आयु ही गयी।
नवीन वंश जान के।
न वेदना कहीं गयी ।।36।।

(दोधक वृत्त)

सूत सदा जग में कहलाया।
हो अपमानित जीवन काटा।
मौन रहीं सब देख कुलीना।
क्लेश नहीं तुमने कुछ बाँटा ।।37।।

(प्रमिताक्षरा वृत्त)

जननी न वत्स कुछ याद रहा।
परिवाद[1]-जन्य भय घोर महा।
अब क्या विचार उपजा मन में।
अपशंक[2] आप इतनी क्षण में ।।38।।

सब भीति[3] छोड़ पुर के जन की।
झट ग्रन्थि खोल अपने मन की।
यह आज देवि सब भेद कहा।
जब शेष अंश वय[4] का न रहा ।।39।।

(वियोगिनी वृत्त)

यशगोपन[5] आपने किया इतने काल सयत्न वंश का।
इससे बहुमूल्य क्या लखा ममता ने अब मोल अंश का ।।40।।

हटना अब शोभता नहीं चिरपाला व्रत आपने बड़ा।
न महान मनुष्य छोड़ता प्रण चाहे यम सामने खड़ा ।।41।।

---

1. लोक निन्दा, कलंक; 2. बिना शंका के; 3. भय; 4. उम्र; 5. यश की रक्षा।

(कुण्डलिया)

कोकिल से तुम देवि हो एक बात में भिन्न।
उसकी प्रकटित कालिमा देवी की प्रच्छन्न[1]।
देवी को प्रच्छन्न अनुकरण वाणी से ही।
कर सकते थे अन्य, हीन थे प्राणी से ही।
आचारों को किन्तु आपने हो अपनाया।
देकर जन्म तनय को अन्यों से पलवाया ॥42॥

किन्तु नहीं कोकिल-तनय बन सकता राधेय।
पालक के स्वर ग्राह्य हैं नहीं आपके गेय।
नहीं आपके गेय मलिन हो सकते दिनकर।
जातवेद[2] हिमशीत[3] चण्ड हो सकता हिमकर[4]।
किन्तु न विस्मरणीय कभी भी राधा माता।
नहीं जनक से हीन कभी हो सकता त्राता[5] ॥43॥

(सार)

मुझ पर यह अधिकार बोध तव
विस्मय जनक नहीं है।
क्षत्रिय वर्ग मानता अपना
जो कुछ धरे मही[6] है।
बिना किए कुछ नृपति प्रजा का
पिता कहा जाता है।
अन्यों का हो स्वत्व[7] स्वल्प भी
कहाँ सहा जाता है ॥44॥

---

1. छिपा हुआ; 2. अग्नि; 3. बर्फ के समान शीतल; 4. चंद्रमा; 5. रक्षक;
6. पृथ्वी; 7. अपनापन, अधिकार।

टूट चुका सम्बन्ध उसी दिन
फेंका जिस दिन जल में।
अणु भर भी अब तत्व नहीं है
ममता के इस छल में।
अच्छा होता मुझे डुबा देती
तटिनी को धारा।
राजसुता को मिल जाता
अपयशभय से छुटकारा ॥45॥

किन्तु नियति है क्रूर दूर तक
मुझको अहा बहाया।
नृपतनया का पुत्र सूतसुत
आजीवन कहलाया।
राजसौध में पाले जाते
जो धात्री के द्वारा।
उनसे श्रेष्ठ अभी भी है यह
राधाराजदुलारा ॥46॥

नहीं खेद है मुझे अमल
निशदिन वात्सल्य मिला है।
निश्छल-ममता-सुधा-सतत—
अभिसिञ्चित पुष्प खिला है।
वहाँ नहीं सम्बन्धों में
अभिगुम्फित है चतुराई।
राजमहिषियों से बढ़कर है
मेरी राधा माई ॥47॥

तुमने जना तजा तत्क्षण ही
उस पर बनतीं माता।
जिसने पाला उसका कोई
स्वत्व नहीं रह जाता।
सदा किन्तु मुझको ममतायुत
प्रियतर पर्णकुटी है।
नहीं सौध[1] हैं काम्य[2] सरलता
मृदुता जहाँ लुटी है ।।48।।

जीवन से भी अधिक शूर को
मान प्रेय होता है।
अपयश और अनादर से तो
मरण श्रेय होता है।
जीवन तुमने दिया सुयोधन
किन्तु मान दाता है।
अपयश की तुम मूल
अनादर से मेरा त्राता है ।।49।।

पग-पग पर अपमानित जन को
मिला मान भूले से।
मृदुता और मित्रता के हैं
सुमन सदा फूले से।
मान हेतु था तृषित हुआ जन
यह इतना आभारी।
दुर्योधन का साथ न छोड़ूँ
आए विपदा भारी ।।50।।

1. राजमहल; 2. वांछनीय।

मेरा गुण समुदाय धूसरित
एक दोष के मारे।
मात्र एक गुण कौरवेन्द्र[1] का,
धोता दुर्गुण सारे।
निज स्वभाव विपरीत कभी,
यदि उद्धत हो जाता हूँ।
दिया जगत ने मुझे विवश हो,
वो ही लौटाता हूँ ॥51॥

जिसने दिया समादर खुलकर,
मानक्षुधित[2] इस जन को।
करूँ समर्पित एक उसी को,
अपने इस तन मन को।
मेरा वही वयस्य[3] जगत में,
मेरा वही अकेला।
उसके हित सारे समाज की,
कर दूँगा अवहेला[4] ॥52॥

उसे छोड़ दूँ इस अवसर पर,
कैसे आज अकेला।
साथ दिया था एक उसी ने,
जग ने की अवहेला।
कर मैत्री का घात आज मैं,
मिल जाऊँ अनुजों में।
कर पैशाचिक कृत्य गिना,
जाऊँगा क्या मनुजों में ॥53॥

1. दुर्योधन; 2. भूखा; 3. मित्र; 4. तिरस्कार।

क्या अधिकार जताऊँगी मैं,
जो निजकर से खोया।
जीवन भर मैंने आँचल को,
नयन वारि से धोया।
हर दुष्कृति[1] की कोई निष्कृति[2]
यह समाज बतलाता।
किन्तु कुमारी माँ को यह लव[3]
करुणा का न दिखाता ।।54।।

तुम लौटोगे नहीं हठी हो,
प्रणपालक हो मानी।
अति उदार धर्मज्ञ कर्ण हो,
जग में अनुपम दानी।
दीन हीन जन देख तुम्हारा,
हृदय द्रवित होता है।
करुणा और अनुग्रह का,
पीयूष[4] स्त्रवित होता है ।।55।।

इसी एक आशा का सम्बल,
लेकर मैं भी आयी।
अधिकारों की क्या मुँह लेकर,
दूँगी आज दुहाई।
किन्तु याचना हेतु अधिकृता,
अब भी निज को मानूँ।
दान क्षमा का यदि मिल जाए,
दानी तुझको जानूँ ।।56।।

1. अपराध; 2. प्रायश्चित; 3. सूक्ष्म कण; 4. अमृत।

वत्सलता की ही प्रतिमा हैं,
उनकी सदा कृतज्ञा।
पद छोनूँ राधा का ऐसी,
नहीं निपट[1] मैं अज्ञा[3]।
जनकर भी न बनीं जननी,
माँ तेरी बस राधा है।
एक बार ही माँ कहने में,
तुझको क्या बाधा है ॥57॥

(तोटक वृत्त)

नवजीवन आज मिले मुझको।
कह दो बस माँ अपने मुख से।
करुणा कर दो जननी पर भी।
जन के तुम मोचन[3] हो दुख से ॥58॥

अब तक कोई विमुख न लौटा,
तुझसे याचन करके।
लौटे तेरी जननि निराशा से,
ही झोली भर के।
एक शब्द भी पा न सकी वह,
निकली निपट अभागी।
दानवीर बन गया विलक्षण,
त्यागी माता त्यागी ॥59॥

1. अत्यन्त नितान्त; 2. मूर्ख; 3. छुड़ानेवाला, उद्धार करने वाला।

(सुन्दरी सवैया)

अबला अति हूँ महिषी कब थी,
बहु आयु गयी वन बीच हमारी।
सुख का न कभी लवलेश मिला,
दुख की प्रतिमा यह मातु तुम्हारी।
जब काल न था तब पुत्र जना,
जब चाह हुई पति शापित भारी।
विधि वाम सदा इस भाँति रहा,
धन बीच रहे हम नित्य भिखारी ।।60।।

भटकी मम नाव बिना पतवार,
विराट दुखोदधि हाय भरा है।
किस धातु बना मन ज्ञात नहीं,
न हुआ यह क्षार सदैव जरा है।
वय बीत गयी अब आ पहुँची,
बहु आधि समेत समीप जरा है।
पर छोड़ तुझे परिताप सहा,
नित घाव अभी तक वत्स हरा है ।।61।।

सहती नित खेद प्रसन्न करे,
नर को सब भाँति सदा मुस्काए।
सब पातक क्षम्य यहाँ नर के,
अबला त्रुटि ही महती कहलाए।
पर शूल समान लगे जब पा,—
—तकिनी कहते निजके उपजाए।
जग पाप निकाय कहे उस को,
भगवान कभी वनिता न बनाए ।।62।।

देखी करुणा निज जननी की,
पिघला लौह पुरुष भी।
उच्च दाब पर धारण करते,
द्रव का भाव परुष भी।
द्रवीभूत भी गरिमायुत था,
पृथा-नयन का तारा।
द्रव होकर भी धातुगण्य है,
जैसे निर्मल पारा ॥63॥

कुछ लव छिपा रखी करुणा,
वसु[1] ने निज अंतस्तल[2] में।
ज्यों निदाघ[3] में छिप जाती है,
जल धारा मरुथल में।
किन्तु प्रवाहित रहती है वह,
भूतल से कुछ नीचे।
भाव सरित का वेग दबाते,
खड़े रहे दृग मींचे ॥64॥

सुनकर दीन वचन माता के,
उनका धीरज छूटा।
वज्र हृदय को चीर एक,
करुणा का निर्झर[4] फूटा।
दौड़े माँ कह बार-बार,
गिर पड़े जननि चरणों में।
हिलकी बनें भाव दोनों के,
व्यक्त कहाँ वर्णों[5] में ॥65॥

1. कर्ण; 2. हृदय; 3. ग्रीष्म ऋतु; 4. स्त्रोत; 5. शब्द, अक्षर।

पाहन[1] की दृढ़िमा[2] भी जिसके,
उर से सदा लजाती।
हो हो कर सन्तप्त सघनता[3],
जिसकी बढ़ती जाती।
जननि नयन जल विगलित होकर,
बहा क्षीर[4] निधि-पय[5] सा।
हुई प्रकम्पित देह मचा,
मानस में क्षणिक प्रलय सा ।।66।।

कुलिश[6] कठोर अयोमय[7] जैसे,
बह निकला पारद[8] सा।
शशिवत देख जननि का आनन,
उमड़ पड़ा दारद[9] सा।
सब कुछ बिसराकर धृति-सागर[10]
होता इस वेलाकुल[11]।
तापयुक्त उष्णानिल[12] अम्बुधि,
भी होता वेलाकुल[13] ।।67।।

सञ्जीवनी[14] मिली हो जैसे,
मूर्च्छित रामानुज[15] को।
जैसे भक्ति मिले वैरागी,
ज्ञानी यमी मनुज को।
तपोनिरत या फिर सुनीतिसुत[16]
को हरि कृपा मिली हो।
ऐसे आज मिली माता ज्यों,
तम में ज्योति जली हो ।।68।।

---

1. पत्थर; 2. कठोरता; 3. घनत्व; 4. समुद्र; 5. जल; 6. वज्र; 7. लौहयुक्त; 8. पारा; 9. समुद्र; 10. धैर्य का समुद्र; 11. इस समय व्याकुल; 12. गर्म हवाओं वाला, उष्ण निःश्वासों वाला; 13. तट को व्याकुल आक्रान्तकरने वाला; 14. जड़ी बूटी जिससे लक्ष्मण स्वस्थ हुए; 15. लक्ष्मण; 16. ध्रुव।

मरुथल भ्रान्त मुमूर्षु[1] तृषाकुल[2]
को ज्यों मिली सुधा हो।
भटके हुए वत्स को मानो,
मिलती कामदुधा[3] हो।
निधि[4] मिल गयी अकिंचन को ज्यों,
लिपटे व्याकुल माँ से।
अक्षम कवि उस सुख वर्णन में,
लाए शब्द कहाँ से ॥69॥

कार्तिकेय ज्यों हरि[5] प्रसाद से,
मिले जगज्जननी[6] को।
पंचजनासुरहृत सुत मिलता,
सान्दीपनि-पत्नी को।
शम्बरघातीसुत रूक्मिणि को,
जैसे मिला समाया[7]।
आज मिला कुन्ती को अङ्गज,
हर्ष न हृदय समाया ॥70॥

अश्रुधार शिर सींच मिली,
जाकर सुत के दृग-जल से।
मानो मिलती हो सुरसरिता[8],
वारिधि[9] अति उच्छल से।
उतर रही थी मानो गङ्गा,
उत्तमाङ्ग[10] पर भव[11] के।
सकल मनो-मालिन्य मिटाने,
तृषा ताप इस भव[12] के ॥71॥

---

1. मृतप्राय; 2. प्यासा; 3. सुरभि गाय; 4. सम्पत्ति; 5. शिव; 6. पार्वती; 7. मायावती सहित; 8. गङ्गा; 9. समुद्र; 10. शिर; 11. शिवजी; 12. संसार।

जीवन भर की सञ्चित निधि,
दोनों थे आज लुटाते।
नयन वारि के ब्याज शुभ्र नव,
मौक्तिक प्रचुर गिराते।
बाँध बनाकर रखी वेदना,
राशि विपुल जो अब तक।
तोड़ दिया निज को भी छोड़ा,
आ सागर[1] बहने तक ।।72।।

कौशल्या के पुत्र मिलन से,
भी क्या इसकी तुलना।
वनवासान्त मिला उसको सुत,
यहाँ कहाँ फिर मिलना।
त्यागा वहाँ विमाता[2] ने था,
साथ रहे पर भ्राता।
यहाँ सहोदर बने विरोधी,
स्वयं त्यागती माता ।।73।।

प्रथम बार जीवन में पाये,
खुले द्वार जो मन के।
निकले भाव वेग से इतने,
बने घोष[3] रोदन के।
चरण पखारे नयन नीर से,
नहीं सौख्य को समता।
उष्ण धार से सींच रही थी,
शीश निरन्तर ममता ।।74।।

1. समुद्र तक; 2. सौतेली माँ; 3. स्वर, शब्द।

जब जब होता तप्त सघनता[1],
जिस उर की बढ़ती थी।
अब होकर सन्तप्त सघनता[2],
उस उर की बढ़ती थी।
उमड़ घुमड़ बरसे भावों के,
जलधर[3] ताप गया सब।
शारद[4] व्योम सदृश निर्मल मन
रूप मिला था अभिनव ।।75।।

किस अपराध हेतु माता ने,
मुझ बेबस को त्यागा।
सूर्यपुत्र होकर भी निकला,
क्यों कर निपट अभागा।
मानस के तम में टटोलता,
अन्धक वत सुत-दिनकर।
परिचय अपना स्वयं खोजता,
भटका क्यों जीवन भर ।।76।।

क्रन्दन शिशु का रुका न केवल,
अन्तर्मुखी हुआ है।
जन समाज ने दुखती रग को,
बारम्बार छुआ है।
किया विडम्बित[5] कैसे विधि ने
जीवन विरस[6] कुआँ है।
पाशे विधि के हाथ जिन्दगी,
मानों एक जुआ है ।।77।।

---

1. घनत्व कठोरता; 2. घन सहित, वाष्प या अश्रुसहित; 3. बादल; 4. शरद ऋतु का; 5. छला है; 6. जल रहित।

उल्का सा मैं रहा दौड़ता,
किस रजनी में सोया।
किसने देखे मेरे आँसू,
जब मन ही मन रोया।
बार-बार था उसे खोजता,
जो क्षण मैंने खोया।
कल्पित माता का ही आँचल,
कितनी बार भिगोया ।।78।।

रिपु भी यदि इस जनके सम्मुख
याचक बनकर आए।
दूँ अभीष्ट फिर जननि कर्ण की
बिना लिए कुछ जाए।
जीवन दान चार तनुजों[1] को,
देता हूँ मैं माता।
क्या चिन्ता है तुम्हें जगत्पति,
पंचम सुत के त्राता ।।79।।

विदित पंचपुत्रा[2] ही जग में,
सदा रहीं तुम माता।
अब भी रहें पाँच सुत तेरे,
चाहे यही विधाता।
भ्रातृघात[3] कैसे हो सकता,
मुझसे अब इस रण में।
अर्जुन एक लक्ष्य मम होगा,
विवश बँधा हूँ प्रण में ।।80।।

1. पुत्रों; 2. पाँच पुत्र हैं जिसके; 3. भाइयों की हत्या।

जीत गया यदि पार्थ आर्त[1] मत,
होना जननी मेरी।
वशवर्ती हैं प्राणी उसके,
नियति[2] नहीं है चेरी।
रहा कर्ण असवर्ण[3] सदा ही,
मत आवरण उठाना।
इस हतभाग्य तनयहित माता,
लोचन तुम न बहाना ॥81॥

धन्य धनञ्जय[4] हुआ कहीं यदि,
वीरों की गति पाकर।
इन चरणों में बैठ रहेगा,
कर्ण विजय ठुकरा कर।
कर लेना सन्तोष तुम्हें भी,
खोया पुत्र मिलेगा।
परित्याग परिताप शल्य[5],
तत्क्षण उर से निकलेगा ॥82॥

मैं भी चिन्तित नहीं बन्धु[6],
के ही तो घर जाना है।
मेरे लिए समान मारना या,
फिर मर जाना है।
मिली अन्ततः जननि बहुत ही,
चित्त मुदित[7] है मेरा।
कहाँ डाल सकता संशय अब,
इस मानस में डेरा ॥83॥

1. दुखी; 2. भाग्य; 3. भिन्न; जाति या वर्ण का; 4. अर्जुन; 5. काँटा; 6. सूर्य पुत्र यम; 7. प्रसन्न।

निकल चुका जो समय हाथ,
किसके अब लौटाना है।
माता संभव नहीं आपके,
साथ अभी जाना है।
विजयी बनें और सुख भोगें,
पाण्डव मेरे भाई।
इस जन का सारा जीवन ही,
जननी बना लड़ाई ॥84॥

रहूँ पंचपुत्रा ही विधि का,
पंच प्रपञ्च बड़ा है।
पंच तत्व[1] में मिला न अब तक,
वपु यह बहुत कड़ा है।
विलग पंचप्राणों[2] से आत्मा,
देखो इस अबला की।
पंचानन[3] में सब कुछ सहकर,
बनी सखी अचला[4] की ॥85॥

(गीतिका छन्द)

अपसरण अपलक लखा वसु ने ममत्व मरीचि का।
निवर्तन उस अचानक आयी सुधा की वीचि का।
सुरभि लहरी सी गयी क्षण मात्र को अनुभूत हो।
रह गये जड़वत खड़े वसु स्नेह से अभिभूत हो ॥86॥

जहाँ सिकता पर पड़े थे जननि के पावन चरण।
झुकाया मस्तक लगायी रज कि ज्यों हो आभरण।
क्षमा करना अम्ब सुत का कठिनतर वह आचरण।
वेदना का बहुत पहले कर चुके हम तो वरण ॥87॥

1. देह पंचतत्वों से बनी है, मृत्यु होना पंच तत्व में मिलना है; 2. पाँच प्राण वायु;
3. शिवजी; 4. पृथ्वी।

हुआ अनिल अधीर देखा धीर को रोते हुए।
निरन्तर दृग वारि से अपना वदन धोते हुए।
मिटाए पदचिन्ह सत्वर रेणु राशि प्रकीर्ण कर।
सुत हृदय पर मातृ प्रतिमा हो चुकी उत्कीर्ण पर ।।88।।

□□